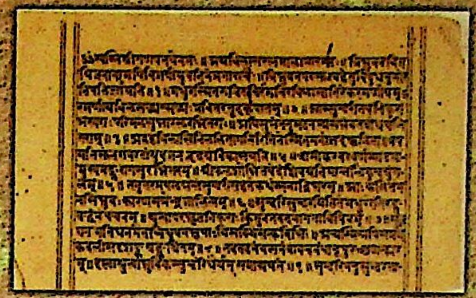


श्रीमत्कौशल्यगोत्रोद्भवलक्ष्मीनारायणाह्वयकविवरविरचिता

विलासरत्नमाला

सम्पादिका

अपराजिता मिश्रा



राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः

चन्द्रशेखर-आजादोद्यानम्

प्रयागः - 211002

Ganganatha Jha Campus Text Series No. 70

General Editor

Prof. Sarvanarayan Jha

Vilāsaratnamālā

by Lakṣmīnārāyaṇa

Edited by

Aparajita Mishra



Rashtriya Sanskrit Sansthan

Ganganatha Jha Campus

Chandrashekhar Azad Park

Allahabad - 211 002

2011

Published by : **Principal**
Rashtriya Sanskrit Sansthan
Ganganatha Jha Campus
Chandrashekhar Azad Park
Allahabad - 211 002 (U.P.) India

First Edition : 2011

Price : Paper Back ₹ 25/-
Hard Bound ₹ 100/-

978-93-83135-97-4

Printed At : Academy Press
Daraganj, Allahabad

गङ्गानाथझापरिसरमूलग्रन्थमाला प्रसूनम् - 70

प्रधानसम्पादकः

प्रो. सर्वनारायण झा

श्रीमत्कौशल्यगोत्रोद्भवलक्ष्मीनारायणाह्वयकविवरविरचिता

विलासरत्नमाला

सम्पादिका

अपराजिता मिश्रा

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

गङ्गानाथझापरिसरः

आजादोद्यानम् , इलाहाबादः 211002

2011

प्रकाशकः प्राचार्यः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(मानित-विश्वविद्यालयः)
गङ्गानाथझा-परिसरः,
इलाहाबादः -2

संस्करणः प्रथम

प्रकाशनवर्षम् - 2011

मूल्यम् : पत्रबन्धावरणम् ₹ 25/-
कठिनबन्धावरणम् ₹ 100/-

पृष्ठविन्यासकरः
ब्रह्मानन्दमिश्रः

सहयोगः
आशीषकुमार द्विवेदी

मुद्रणम्
एकेडमी प्रेस,
दारागंज, इलाहाबाद

प्राक्कथन

जीवनानुभव, लोकचेतना तथा शास्त्रीय चिन्तन तीनों आधारों पर भारतीय मनीषा ने शृङ्गार को असाधारण महत्त्व दिया है। साहित्य की विविध-विधाओं और विशेषत: काव्य साहित्य में इसका प्राधान्य सर्वत्र परिलक्षित होता है। संस्कृत-काव्य परम्परा तथा उसके भेदों में भी शृङ्गार रस बाहुल्येन अङ्गीरस के रूप में स्थापित रहा है। मुक्तक-काव्य (गीतिकाव्य) भेद में नीति, शृङ्गार, स्तुति, वैराग्य भाव आदि से सम्बद्ध प्रचुर साहित्य निरन्तर लिखा जाता रहा है। भर्तृहरि का 'शतकत्रय', भल्लट का 'भल्लटशतक' तथा अमरुक का 'अमरुकशतक' संस्कृत वाङ्मय में अत्यधिक प्रतिष्ठित हुए हैं। मुक्तक-काव्य के क्षेत्र में शृङ्गारपरक काव्य-लेखन की परम्परा में ही लक्ष्मीनारायण विरचित 'विलासरत्नमाला' अन्यतम कृति है। कविवरलक्ष्मीनारायण ने शृङ्गारानुकूल आर्या-छन्द में सरल, लालित्यपूर्ण भाषा में शृङ्गारिक पद्यों को प्रस्तुत किया है। शृङ्गार-वर्णन के प्रसङ्ग में नायिका के नख-शिख वर्णन की परम्परा संस्कृत-साहित्य में प्राप्त होती है। संस्कृत साहित्य के नायिका-भेद के ग्रन्थों से आरम्भ होकर यह प्रवृत्ति हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल तक आते-आते प्रधान हो गई। प्रस्तुत सम्पादित-ग्रन्थ में भी नायिका के सौन्दर्य-वर्णन को सरसता, मनोहरता एवं गेयता के साथ व्यञ्जित किया गया है। विशुद्ध शृङ्गार काव्य होने पर भी कवि का शब्दचयन तथा वर्णन शैली सुपरिष्कृत है।

एकमात्र उपलब्ध प्रति के आधार पर इस हस्तलेख का सम्पादन परिसर की सहायक आचार्या विदुषी डॉ. अपराजिता मिश्रा के द्वारा किया गया है। यह ग्रन्थ मुक्तक-काव्यपरम्परा की दृष्टि से उल्लेखनीय होगा।

सर्वनारायण झा

विषय-सूची

भूमिका

संस्कृत–साहित्य में मुक्तक काव्यों की समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। काव्यविधा के रूप में मुक्तककाव्य का उल्लेख सर्वप्रथम भामह के 'काव्यलङ्कार'[1] में प्राप्त होता है। भामह ने मुक्तक के लिए 'अनिबद्ध काव्य' लक्षण का प्रयोग किया है। दण्डी ने इस प्रकार की स्फुटश्लोक युक्त रचनाओं को मुक्तक, कुलक, कोश, सङ्घात आदि संज्ञाएँ देकर इन्हें महाकाव्य का अंश मानकर इनका लक्षण या पृथक् निरुपण आवश्यक नहीं माना।[2] वामन ने तो इस काव्यविधा की सर्वथा उपेक्षा ही की है।[3] सर्वप्रथम आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनि के परिप्रेक्ष्य में व्यञ्जना को महिमामण्डित करने के साथ ही मुक्तक अथवा स्फुट काव्यों को महत्त्व प्राप्त हुआ। आनन्दवर्धन ने यह स्वीकार किया कि मुक्तकों में रससृष्टि उसी प्रकार हो सकती है, जिस प्रकार प्रबन्ध में[4]। अमरु कवि के 'अमरुकशतक काव्य' ने मुक्तक काव्य का उदाहरण भी प्रस्तुत कर दिया।[5] लोचनकार अभिनवगुप्त ने सर्वप्रथम मुक्तक काव्य का अपेक्षाकृत स्पष्ट लक्षण किया।[6] इनके अनुसार जो पूर्वपर निरपेक्ष हो कर भी रसचर्वणा करा सकता है, वह मुक्तक है। अग्निपुराण में पद्यकाव्य के भेदों में मुक्तक का भी परिगणन किया गया है। वस्तुतः अनिबद्ध–काव्य की सभी विधाओं का बीज मुक्तक ही है, और मुक्तक के पल्लवन से संस्कृत काव्यधारा में रसात्मक लघुकाव्य, स्तोत्रकाव्य, प्रशस्तिकाव्य तथा सूक्तियों की रचना होती आयी है।[7] स्फुट मुक्तकों में शृङ्गार, नीति, वैराग्य, स्तुति तथा प्रशस्ति के विषय ही प्रमुख रहे हैं। 16वीं शदी में कई शृङ्गारिक मुक्तकों की रचना हुई। उत्प्रेक्षावल्लभ का 'सुन्दरी शतक', गोस्वामी जगन्निवास का 'शृङ्गारशतक', नरहरि कवि का 'शृङ्गारशतक', कामराज दीक्षित का 'शृङ्गार–कालिका–त्रिशती' सभी शृङ्गार काव्य हैं[8]। अमरुक, भल्लट और भर्तृहरि आदि द्वारा जिस मुक्तक काव्य की धारा को प्रतिष्ठित किया गया उसका विकास निरन्तर होता रहा। तथा मुक्तक के क्षेत्र में नयी विधाएँ और प्रवृत्तियाँ निरन्तर पनपती रहीं। प्रस्तुत ग्रन्थ विलासरत्नमाला भी इसी काव्य परम्परा की अग्रिम कड़ी है।

लक्ष्मीनारायण द्वारा विरचित यह ग्रन्थ आर्या छन्द में शृङ्गार के 109 पद्यों से युक्त लघुकलेवर काव्यग्रन्थ हैं। इस काव्य में नायिका के विभिन्न अङ्गों के सौन्दर्य तथा उसकी विविध मधुर चेष्टाओं का वर्णन किया गया है।

हस्तलेख में इस ग्रन्थ के रचयिता के विषय में स्पष्ट उल्लेख है। हस्तलेख की पुष्पिका[9] कौशल्यगोत्रोत्पन्न लक्ष्मीनारायण कविश्रेष्ठ को इसका रचयिता बताया गया है। इसका रचनाकाल हस्तलेख में शकाब्द 1807 उल्लिखित है। इस हस्तलेख में उल्लिखित लक्ष्मी नारायण कौन है? यह स्पष्ट नहीं है। कैटेलॉगस् कैटेलॉगरम् इस[10] सूची ग्रन्थ तथा अन्य सूची ग्रन्थों में इस नाम से जो भी लेखक उपलब्ध होते हैं सम्भवत: उनमें से ही किसी की यह रचना भी हो सकती है। परन्तु इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य अथवा संकेत मुझे ज्ञात नही हो सका है। डॉ. राजेन्द्रलाल मिश्रा[11] के पाण्डुलिपि सूची संग्रह में ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें खण्ड में तथा कृष्णामचार्या[12] द्वारा भी अनेक लक्ष्मीनारायण नामक रचनाकारों का उल्लेख है।

लक्ष्मीनारायण ने हस्तलेख की पुष्पिका में इस ग्रन्थ को चन्द्रमौली[13] नगरी में रचित बताया है। काशी के लिए ही चन्द्रमौली नगरी का प्रयोग होता रहा है। पुष्पिका में ही यह स्वयं को कौशल्य गोत्रोद्भव बताते है। कौशल जनपद के क्षेत्र में उत्तरी भारत में विशेषत: उत्तर प्रदेश का क्षेत्र[14] ही आता है अत: ऐसा प्रतीत होता है कि इस काव्य की रचना काशी में हुई है। परन्तु पुष्ट साक्ष्यों के अभाव में हम लक्ष्मीनारायण के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ भी कहने में सक्षम नहीं हैं।

काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से विचार करने पर भी यह एक श्रेष्ठ मुक्तक काव्य सिद्ध होता है। शृङ्गार रस के अनुकूल आर्या छन्द का प्रयोग कर सम्पूर्ण काव्य निबद्ध किया गया है। आचार्य भरत ने छन्दों में भी आर्या को, उसकी सुगेयता के कारण शृङ्गारानुकूल बताया है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में कहा है –

रूपकदीपकसंयुक्तमार्यावृत्तसमाश्रयम्।
शृङ्गारे रसकार्यं तु काव्यं स्यान्नाटकाश्रयम – ना.शा.17/119

शृङ्गाररस में उन्होंने रूपक तथा दीपक इन दो अलंकारों का तथा आर्या (जाति के) छन्दों को अभ्यर्हित किया है। यमक को, प्रयत्न साध्य होने के कारण, शृङ्गार के प्रतिकूल तो भरत ने भी निश्चित ही समझ रखा होगा। आनन्दवर्धनं ने तो बड़े स्पष्ट शब्दों में शृङ्गार और यमक की सहस्थिति सदोष बताई है –

ध्वन्यात्मभूते शृङ्गारे यमकादिनिबन्धनम्।
शक्तावपि प्रमादित्वं विप्रलम्भे विशेषत:। ध्वं.2/15

जैसे की शृङ्गारहृदय शाकुन्तल का 'तव न जाने हृदयम्' आदि में तथा अन्यत्र आर्याशप्तशती आदि में प्राय: सभी शृङ्गार की अति मधुर उक्तियों में आर्या के वैभव को अनुभूत किया जा सकता है।[15]

'विलासरत्नमाला' में आर्या छन्दों को कुशलता से प्रयोग किया गया है। इन्होंने उपमा, रूपक, यमक, अनुप्रास, अनन्वय आदि अलंकारों का सहज प्रयोग कर के सौन्दर्य में वृद्धि की है।

जैसे की आचार्य भरत और मम्मट के कथनानुसार यमक का प्रयोग शृङ्गार की प्रकृति के विपरीत है परन्तु लक्ष्मीनारायण ने जो दो जगह श्लोकों में यमक के प्रयोग किए है उनमें दुर्बोधता और रसानुभूति में बाधकता नही प्रतीत होती उदाहरणार्थ –

घनसारं घनसारं वरहारं तन्वि वापि वरहारम्।
अपसारय कुचयुगलादपसारय मेऽपि हृदयार्त्तिम्।।

सङ्गःस्तरुणी सङ्गस्स्पर्शस्तरुणी लसत्कुचस्पर्शः।
दृष्टिस्तरुणीदृष्टिस्तरुणी वचनं सरवे वचनम्।।

सम्पूर्ण काव्य में रूपक और उपमा अलङ्कारों का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है और प्रत्येक स्थल पर यह प्रयोग सहज हैं और काव्यगत रमणीयता के वर्धक हैं, यथा –

युवतिरियं वरदीपस्तल्लावण्यम्परा शिखा भाति।
युवजनमनःपतङ्गाः प्रसभं तदुपरि परिपतन्ति।।

तन्वि तवालकगुम्फितनवतरसुमनो मनोज्ञगन्धेन।
हृतमनसश्च्युतलतिकास्त्वामभिगच्छन्ति रोलम्बाः।।

यहाँ युवती का दीपक से, उसके लावण्य का दीपशिखा से तथा युवकों के मन का पतङ्ग से रूपक बाँध कर रूपक का उत्कृष्ट उदाहरण दिया गया है। इसी प्रकार –

भ्रूवरचापोत्क्षिप्तै रतिनिशितैस्ते कृशाङ्गि दृग्विशिखैः।
दलितं ननु हृदयं मे स्पर्शरसेनाशु योजय तत्।।

इस उदाहरण में भी नायिका की भ्रू का चाप से दृष्टि का बाणों से रूपक प्रस्तुत किया है। रूपक का एक और उत्कृष्ट उदाहरण इस श्लोक में द्रष्टव्य है –

अनुरतिलतिकां सुन्दरि! हृदयधरायां भृशं समारोप्य।
अपसृति हि मे न दलयसि नोचितमिति ते चकोराक्षि।।

अनुराग का लतिका तथा हृदय का धरा से अभेद कल्पन रूप रूपक अलंकार का निदर्शन है। उपमा के भी अनेक सुन्दर उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किए हैं –

सुन्दरि मदनपताके तव मुखमिति साधु वर्द्धिताभिख्यम्।
शारद इव राकेन्दुर्युवहृदयं सम्प्रसादयति।।

तव वरवर्णिनि मुखमिव राजति सुश्रोणि शारदेन्दुरयम्।
स्तनयुगमिव वरजघने कनककलशयुगमिदं भाति।।

नवनीतकोमलाङ्गि प्रस्तरसदृशम्भृशं तव स्वान्तम्।
त्वनमनसामस्माकं दृष्ट्वा तापं न यद् द्रवति।।

इनमे अतिरिक्त अनन्वय अलङ्कार का प्रयोग भी सुन्दर बन पड़ा है –

काञ्चनगौरि विलासिनि सितकरवदने वरस्मितोल्लासे।
तव लावण्यं लोके तव लावण्यं विभातीव।।

उपमेयोपमा अलंकार का भी उदाहरण एक श्लोक में है –

त्वयि करभोरुविलासिनि सुस्तनि विकसितसरोजदलनयने।
गुण इव कान्तिरनन्ता कान्तिरिवाभाति तन्वि गुणः।।

अनुप्रास का भी कतिपय स्थलों पर सहज सुन्दर प्रयोग कवि की सहज प्रतिभोत्थित काव्य प्रतिभा को प्रमाणित करता है। कवि द्वारा किया गया सूक्तियों का प्रयोग भी काव्य–सौन्दर्य में अभिवृद्धि करता है उदाहराणार्थ –

दुष्टधिया तन्वि कया कुरुषे मानं कुशिक्षिता सख्या।
शिव शिव दुर्ज्जनसंगतिरपि सुजनं दुर्ज्जनं कुरुते।।

नायक कहता है कि किस दुष्ट सखी द्वारा तुम्हे कुशिक्षा दी गई है सत्य है कि दुष्टों का संग सुजन को भी दुर्जन बना देता है।

अतः भाव पक्ष के साथ ही कलापक्ष की दृष्टि से भी यह काव्य सम्पन्न है।

सम्पादित–मातृका–विवरण–

इस ग्रन्थ का सम्पादन राष्ट्रिय–संस्कृत–संस्थान के प्रयाग स्थित गङ्गानाथ–झा–परिसर के संग्रहालय सै प्राप्त हस्तलेख के आधार पर किया गया है। हस्तलेख की अधिगम संख्या 16735 है। हस्तलेख की पत्र संख्या 9 तथा पृष्ठ संख्या 18 है। हस्तलेख देवनागरी लिपि में लीथो में हैं। इस मातृका की लीथो प्रति शकाब्द 1807 में श्रीधरशर्मा के द्वारा मुम्बई में जगदीश्वर शिलायन्त्र में मुद्रित

है ऐसा उल्लेख हस्तलेख की पुष्पिका में है। इस हस्तलेख की कोई अन्य प्रति प्राप्त नहीं हुई है। अतः एकमात्र इसी प्रति के आधार पर ग्रन्थ का सम्पादन किया गया है।

टिप्पणी एवं सन्दर्भ (Endnotes)

1. भामह – काव्यालङ्कार, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, काशी, द्वितीय संस्करण वि.सं. 2038, प्रथम परिच्छेद पृ. 18
2. मुक्तकं कुलकं कोशः संघात इति तादृशः। काव्यादर्श, 1/12, पृ. 15

   भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इन्सटीट्यूड, पूना, 1970, एवं त्रिविध काव्येषु पद्यमयकाव्यस्य मुक्तकादयोवान्तरभेदाः, प्राचीनैर्वर्णिताः सन्ति। तेषां तु महाकाव्याङ्गरूपत्वान्न पृथक्तया वर्णनमवश्यम्।
3. नानिबद्धं चकास्त्येकतेजः परमाणुवत् ।।29।, काव्यालङ्कानरवल्वानिबद्धं काव्यं चकास्ति दीप्यते। यथैकतेजः परमाणुरिति। काव्यालङ्कारसूत्र, सम्पादक, डॉ. बेचन झा चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2033 पृ. 41
4. मुक्तकेषु प्रबन्धेन्वित रसबन्धाभिनिवेशिनः कवयो दृश्यन्ते। ध्वन्यालोक, व्याख्या–लोकमणि दाहाल, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2001, पृ. 327
5. "अमरुक आठवीं शताब्दी के पहले हुए यह असन्दिग्ध है।" उद्धृत–संस्कृतवाङ्मय का बृहद् इतिहास, VOI - IV, पृ. 102
6. पूर्वापरनिरपेक्षेणापि येन रसचर्वणा क्रियते तदैव मुक्तकम्। ध्वन्यलोकलोचन पृ. 175, उद्धृत, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, खण्ड–4, पृ.91
7. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, प्रका. उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ सम्पा. राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ. 92
8. संस्कृत–साहित्य रचना का इतिहास आचार्य जयशङ्कर त्रिपाठी, पृ. 492
9. इति श्रीमत्कौशल्यगोत्रोद्भव लक्ष्मीनारायणाव्ह्यकविवरविरचिते विलासरत्नमाला–सम्पूर्णा।। हस्तलेख की पुष्पिका
10. कैटेलागस् कैटेलागरम् , पृ. 538–539
11. Notices of sanskrit Manuscripts, Raja Rajendralala Mitra and M.M. Haraprasada Shastri, shavede Prakashan, Delhi, 1990

12. History of Classical Sanskrit Lit. by Krishnamacharya

13. श्रीमत् कविवरलक्ष्मीनारायणाज्ञानुसारेण इदं पुस्तकं जटाशङ्करात्मजेन श्रीधरशर्मणा मुंबापुर्यां जगदीश्वरशिलायन्त्रे मुद्रापितं ।। शकाब्द-1807

14. कोशल प्रदेश रामायण के अनुसार सरयू नदी के तट पर बसा हुआ था। संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ. 1203

15. शृङ्गारपरिशीलनम्, डॉ. चण्डिका प्रसाद शुक्ल, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 1983, पृ. 245

अपराजिता मिश्रा

सम्पादिका



श्रीमत्कौशल्यगोत्रोद्भवलक्ष्मीनारायणाह्वयकविवरविरचिता

विलासरत्नमाला

ॐ स्वस्ति श्रीगणपतये नमः

अथविलासरत्नमाला प्रारम्भः।।

त्रिभुवनविजयिजनानामपि विजयी युवतिनेत्रनाराचैः।
त्रिभुवनपरसुखहेतुर्विबुधनुतो रतिपतिर्जयति।।1।।

मधुरस्मितरुचिरुचिरं रुचिरविलासातिरेक रमणीयम्।
रमणीयं विलसदस्मद्धृदयः प्रवितरतु दृक् पातम्।।2।।

आस्सुन्दरि तव चिकुरो अखराः परिमलसुभारसुरभितराः।
अपि सुप्तं ननु मदनं प्रसभं वत बोधयन्तितराम्।।3।।

अहह विलासिनि ललितागतिरिति ते स्मितमनोज्ञदृक्कलिता।
त्रपयति सुतरां वरटां युवजनहृदयं विकासयति।।4।।

चामीकरवरवर्णं पाटलमुखमङ्गरागसुरभितरम्।
श्रीफलशोभितवेदं शिवयति मां तन्वि कुचयुगलम्।।5।।

तनुतरमवलग्नन्ते सुन्दरि सहते कथं स्तनाद्रिभरम्।
आः कलितं मनसिभुवः कारणमत्रेन्द्रजालित्वम्।।6।।

सुन्दरि सुन्दरमिति ते मधुरं रतिरङ्गवर्द्धनं वचनम्।
श्रुत्वा परभृतनिकराः किमु नतवदनागता विपिनम्।।7।।

सुजघनमतिघनमेतन्निधुवनभूषाऽयि सक्थि सत्कविभिः।
अन्यस्मिन्नपि समये कदली सदृशं कथं कथितम्।।8।।

तव वदनं वसनं वा वचनं वा नूपुरच्छणत्कारम्।
दृष्ट्वा श्रुत्वा भुवि कः सुन्दरि धैर्यं समाश्रयते।।9।।

सुन्दरि ननु सुन्दरतामाप्तुमिदं दुर्लभां महोपायैः।
त्वामाभरणकदम्बं श्रयति विलासिनि न भूषयितुम्।।10।।

सुन्दरि! चन्दनसुरभिर्घनरुचिरस्ते स्तनोऽहि मलयगिरिः।
मलयगिरिर्म्मलयगिरिर्वाद इति व्यर्थ इतरस्मिन्।।11।।

विबुधा अबुधाः खलु ते कथमपि यैर्न्नीरराशिरुदमाथि।
कृतिनस्तु वयं सुन्दरि! यैरधरामृतमिदं पीतम्।।12।।

मलयजरसपरिषिक्तं परिमलकलितं नवाब्जदलरचितम्।
शयनं मम कुरु सफलं सुदति गृहाणेति ताम्बूलम्।।13।।

अभिनवजलदविराजितशिखरसुवर्णाद्रि कुचवरद्वन्द्वे।
निर्द्वन्द्वैरपि नितरामभिलषिते त्यज रूषं ललने।।14।।

नम्रातिकम्र मध्ये मध्ये भग्नेव तन्वि! किम्भासि।
भासितसुगुच्छभारा भावुकवल्ली न किं नम्रा।।15।।

प्रियसखि! तनुतरमपि ते नवमिति मृदुलं मनोहरं वासः।
सुस्पर्शसुखहरत्वाज्जीर्णकरित्वक् समं भाति।।16।।

ललिताऽपाङ्गविलोकितजितयुवहृदये स्मितोल्लसद्वदने।
मां निजकिङ्करमधुना गमयितुमर्हसि सुधाशि त्वम्।।17।।

तन्वि! मनोरमललिते तव लोकोत्तरमिदं मुखाम्भोजम्।
अस्तमितेऽपि खरांशौ यदतिविकाशं सुपुष्णाति।।18।।

कोकिलमञ्जुलभाषिणि गतिजितकलहंसवर्गगुरुदर्थे।
परिधानान्तरितास्यङ्कथमिति पश्यसि दृगन्तेन।।19।।

अनवद्याङ्गि विलासिनि तव तनुसङ्गम सुखार्थमिति सकलम्।
उत्सृष्टं यदपि मया तदपि न किं तरुणि मां भजसे।।20।।

घनसारं घनसारं वरहारं तन्वि वापि वरहारम्।
अपसारय कुचयुगलादपसारय मेऽपि हृदयार्त्तिम्।।21।।

भूतलमपि पश्यन्ती युवजनहृदयं हरस्यहो या त्वाम्।
स्मितसदपाङ्गविलोकितरुचिरा सा त्वं न किम्प्रेष्ठे।।22।।

ललितस्मितसुन्दरि! तव सदपाङ्गोल्लासिदृष्टिसम्पातः।
मधुरतरोक्तिमनोज्ञः पुण्यतरोर्मे फलं भवतु।।23।।

शशिमुखि! खञ्जननयने स्तनभरनमिताङ्गि बन्धुरालापे।
समदनयौवनवसते वसतिर्भव मेऽपि सोल्लासम्।।24।।

मा कुरु शैवलशङ्कां तन्वि! तनूरोमराजिरेवेयम्।
श्रुतिसङ्गते च नयने नोत्पलशङ्काऽप्यतो मुग्धे।।25।।

पीनस्तनि सीमन्तिनि रुचिराभरणे समुल्लसच्चरणे।
क्षणदेङ्क्षणदात्री यास्यति कस्यातिधन्यस्य।।26।।

पाणिधृताप्यानीता शयने यत्नात्कृता निजोत्सङ्गे।
सुन्दरि! सुरतरसाङ्गे नैषि वशं मेऽत्र करवै किम्।।27।।

अयि सुन्दरि! तव दृष्टिर्न्न मयि पतति जातु तत्र को हेतुः।
शिव शिव कृपणतराणां कृपणत्वं भाति सर्वत्र।।28।।

सुन्दरि! विकसितवदने नयनविकासो न जातु ते कार्ध्यः।
अर्द्धोन्मीलितपुटमपि तव दृक् पातं नु कः सहते।।29।।

सुन्दरि सुन्दरगतिके स्तनकनकाचल भराति नतकाये।
करुणामसृणं हृदयं तवमयि दीने कदा भवति।।30।।

अधिगतबहुसम्मानं हृतमानं सितकरस्य पूर्णस्य।
तव वदनं तनुरदनं सुखसदनं तन्वि! मे भवतु।।31।।

अनुरतिलतिकां सुन्दरि! हृदयधरायां भृशं समारोप्य।
अपसृति हि मे न दलयसि नोचितमिति ते चकोराक्षि।।32।।

वरवर्णिनि तव वचनैरति ललितैरपि च सुदति दृक्पातैः।
विश्वसितमानसोऽहं किमपि न तत्फलमहोन्वगमम्।।33।।

मानिनि! परिहर मानं मानदमिति मां विधेहि सन्मानम्।
चण्डि! न चेदिति मानश्शिव शिव तव वञ्चको जातः।।34।।

अरुणमलयजरसोऽयं यावक इति शङ्कसेऽरुणाक्षि नुयम्।
नोचेदेवं कुरु मे बन्धनमिति बाहुपाशेन।।35।।

यदि वामोरुजनेऽस्मिन् कथमपि करुणा न ते पदं धत्ते।
तर्हि वदाशरणोऽयं विदलितहृदयः क्व यात्वधुना।।36।।

सुन्दरि सुन्दरि पुरस्त्रि रचितगुरुगर्वखर्वतादक्षे।
दक्षेऽपि निजजनेऽस्मिन्क्मिपीदानीं न दाक्षिण्यम्।।37।।

श्रीरपि मम वरभगिनी निजसौन्दर्येण निर्ज्जितेत्यनया।
रमणि विचार्य्य सितां शूरन्ध्रि तत्हृदयोऽभवत्किमयम्।।38।।

प्रचुरालङ्कृतिरम्ये कृतिवरगम्ये युवेन्द्रसँय्यमे।
नक्तङ्कं निजभक्तं वक्षस्सक्तं करोषि संरक्तम्।।39।।

देवयुवतिनिवहोऽपि त्वद्गतिसौन्दर्यदक्षता वीक्ष्य।
गति निर्ज्जितवरवरटे वाञ्छति निजजन्मभूमितले।।40।।

लालित्यं तव वचसां वरवर्णिनि के न याति तुल्यत्वम्।
यल्लेशं समुपेत्य ख्याताः कवयोऽभवन्नत्र।।41।।

ज्योतिर्विदमपि धिक् तं पलितशिरस्केन कम्पिताङ्गेन।
अमुना सह तव ललने सम्बन्धस्साधितो येन।।42।।

लाक्षास्सरहितावपि तव चरणौ तरुणि केन संरक्तौ।
आः खलु विदितं कर्कशविधिकरयोगेन नान्येन।।43।।

साधु तवस्तनयुग्मं मौनं सुगुणम्बिभर्त्ति करभोरु।
तन्वि! मनागपि गुरुतां वाचालो याति भवने किम्।।44।।

कमला कमलाक्षि त्वं भूषणभूषणमनङ्ग वरशक्ते।
कामिनिकामिनि मयि ते सकलासकलाऽस्तु रतिरनिशम्।।45।।

काऽसि मनोरमगमने कुत आयासि क्व यासि कस्यासि।
चिरसञ्चितसुकृतानां कस्य फलं दातुं कामासि।।46।।

अवलोकय मदिराक्षि त्वमिति मदीयं वियोगतनु वदनम्।
निजवदनं शुचिरदनं कुरु मम सदनं विलासानाम्।।47।।

किमिति निषीदसि सुन्दरि सुन्दरबहुभाग्यभोग्यसौन्दर्ये।
अभिलषसि किमबले त्वं वद नतवदने त्रपां मुञ्च।।48।।

शीत्कारि त्वद्वदनं भृशपुलकितमम्बुजाक्षि चलदलकम्।
अर्ज्जितसुकृतसमूहैः पीतं यैर्ज्जगति ते धन्याः।।49।।

स्वेदकणाञ्चितममलं लुलितकचं गलितपत्रराजिनतम्।
ललितश्वसितं कामिनि चारु तवेदं मुखम्भाति।।50।।

मृगशावाक्षि नितम्बिनि पृथुजघने तन्वि हारि कुचयुगले।
इति तव गतिरतिमधुरा कस्य न रसिकस्य हरति मनः।।51।।

सुन्दरि मदनपताके तव मुखमिति साधु वर्द्धिताभिख्यम्।
शारद इव राकेन्दुर्युवहृदयं सम्प्रसादयति।।52।।

उन्नतपीनसुवर्त्तुलसुस्पर्शश्लिष्टरम्यकुचकलशे।
घनरवभीरुकहृदये त्वत्संश्लेषसुखायैष:।।53।।

सदपाङ्गे स्फुरदसे हृदयङ्गमगमनलोलकुचयुगले।
हा सुन्दरि मम हृदयं हृत्वा प्रसभं कयास्यधुना।।54।।

काञ्चनगौरि विलासिनि सितकरवदने वरस्मितोल्लासे।
तव लावण्यं लोके तव लावण्यं विभातीव।।55।।

सुन्दरि पुनरपि च सकृत् सकरुणललितां विधेहि मयि दृष्टिम्।
प्राणप्रियेऽन्यथा मां स्मरसि नु कृत्वा वतानुशयनम्।।56।।

त्वयि करभोरुविलासिनि सुस्तनि विकसितसरोजदलनयने।
गुण इव कान्तिरनन्ता कान्तिरिवाभाति तन्वि गुण:।।57।।

मन्थरपदमिदमबले ललितकराब्जं सुनूपुरारावम्।
स्फुरितापाङ्गविलोकितमति मधुरं ते विभाति गतम्।।58।।

तव वरवर्णिनि मुखमिव राजति सुश्रोणि शारदेन्दुरयम्।
स्तनयुगमिव वरजघने कनककलशयुगमिदं भाति।।59।।

महति तमसि भुजगानां शिरसि निधायागतासि पादं या।
सुखकरमत्करसङ्गा तरुणि कथं वेपसे सात्वतम्।।60।।

मा कुरु मानिनि गर्वं गच्छति सदृशं मयेतिका भुवने।
सुन्दरि मत्ताकरिणी त्वत्सम गति का न किं भाति।।61।।

कोमलकलरवदर्पः सुन्दरि खलु कोकिलेन न हि कार्यः।
तदधिकमिति सीमन्तिनि ललितालापासि यत्सुतराम्।।62।।

वृत्तोन्नतविपुलस्तनि मन्दस्मितचारुचञ्चलापाङ्गे।
दृष्टिरियं तव रुचिरा सुकृतभरं मे व्यनक्तितराम्।।63।।

ललिते ललितेरितजितपरभृतयुवते चलत्कुचाद्रियुगे।
मा मा त्यज वसनं त्यज गीरिति ते रोचते न हि मे।।64।।

कोमलमायत्तममलं तनुतरमञ्जननिभं वरारोहे।
तव कचनिचयमुदीक्ष्य त्वदधीनत्वं प्रयाति को नात्र।।65।।

करुणारसमसृणं ते सुदवीयोऽपि च दृगञ्चलं यूनाम्।
हृदयङ्गमनयनान्तो हृदयं दलयति महच्चित्रम्।।66।।

यस्य प्रीतिर्य्यस्मिंस्तस्मिस्तस्यापि विद्यते लोके।
सत्यपि मयि च तथैव त्वयि न तथैवात्र को हेतुः।।67।।

तरुणि तरुणशशिवदने तरुणसरोजरुहपलाशतरुणाक्षि।
तरुणमनो भ्रमराञ्जिनि मयि तरुणे तन्वि कुरु करुणाम्।।68।।

धीरञ्चारुगभीरं तव मञ्जीरस्य शिञ्जितं ललने।
श्रुत्वा भवति जनः कः शक्तः चेतः स्थिरीकरणे।।69।।

भ्रूवरचापोत्क्षिप्तै रतिनिशितैस्ते कृशाङ्गि दृग्विशिखैः।
दलितं ननु हृदयं मे स्पर्शरसेनाशु योजय तत्।।70।।

अलि कुन्तलभरनमिते गौरस्निग्धाङ्गि पीनवक्षोजे।
त्वत्परिरब्धः कुम्भः कृतवान् कानीह पुण्यानि।।71।।

चञ्चलरुचिरदृगन्ते दर्शयसि किमुरसिजौ च नाभिगुहाम्।
मधुररसान्तालोकः क्षुत्पीडाङ्गि विनाशयति।।72।।

लोकोत्तरशक्तिरियं ललनाशक्तिर्विलोकिताद्य मया।
दृष्टा दलयति हृदयं स्पृष्टा शिवयति यदङ्गानि।।73।।

नवनीतकोमलाङ्गि प्रस्तरसदृशम्भृशं तव स्वान्तम्।
त्वन्मनसामस्माकं दृष्ट्वा तापं न यद् द्रवति।।74।।

सुकृतं किं कृतममुना किञ्च तपोऽताप्यजापि रमणि जपः।
नासामौक्तिकमिति ते यत्खलु मधुरं पिबत्यधरम्।।75।।

स्तनयोस्तव महिमानं शक्तः कः कथयितुं कृती कान्ते।
याभ्यामपि सुदवीयान् कनकगिरिर्निर्ज्जितस्सुखतः।।76।।

यत्र मनसि तव वासस्तत्र वसति तन्वि शोकलेशः किम्।
क्वचिदपि कथमपि तिमिरन्द्योतः चैकत्र किं वसतः।।77।।

स्मितमधुरं लसदलकं विक्षिप्तभ्रूलतं स्फुरन्नेत्रम्।
दृष्ट्वार्य्ये तव वदनं विकृतिं न मनोऽत्र कस्यैति।।78।।

अयि लोलालकललिते नीलनिचोले लसत्कुचोन्नतिके।
अधरे केन सुकृतिना तव समधायीति रदनाङ्कः।।79।।

कस्य सुकृतिनः सुकृतं सफलं कर्त्तुम्प्रिये प्रयासि त्वम्।
क्षणदानेन क्षणमपि कृतकृत्यान्नोऽर्हसि विधातुम्।।80।।

सुदति कठिनतरकुचभरदरनतकृशतरचकासदवलग्ने।
निजजन इति मयि सुन्दरि करुणां कुरु भव च कल्पलता।।81।।

जातुचिदेवं सुन्दरि पुनररुणाक्षि प्रिये नहि विधास्ये।
विस्मर मम चेष्टितमिति कोपन्त्यज हर च शोकं मे।।82।।

सुरतकलाकुशलानाम् अभिनवनवनीतशीतलाङ्गीनाम्।
प्रमदानां समदानामाश्लेषो हन्त्यहो तापम्।।83।।

सखि भुविसारं भवती तव मुग्धस्तनिततःस्तनस्पर्शः।
अपि च ततस्तव कामिनि सुरतरसास्वाद एवालम्।।84।।

सुन्दरि रसाकुलमनसामपि रुचिकृद्रुचिरसाधुवेशानाम्।
मानोऽयं युवतीनां सुमतीनामहह समुदेति।।85।।

तरलाक्षि सुदति सुन्दरि वपुषि तवास्मिन् किमस्ति सामर्थ्यम्।
यत्तवदर्शनमात्राद्धीरा अपि कातराः सन्ति।।86।।

तनुतरमपि दृक्पातं वितर विलासिनि समन्दहसितं मे।
तरुणानामुपकृतये तरुणि विधात्राऽसि विहिता यत्।।87।।

मुग्धे मुग्धदृगञ्जे मुग्धपयोधरभरावनम्रासे।
मुग्धतरं तव जनकश्शिशवेऽस्मै येन दत्तासि।।88।।

अधरामृतमिति तव यःसकृदपि पिबति प्रिये प्रियं पुण्यात्।
अभिलषति त्रिदिवीयं किमु स रसज्ञः पुमानमृतम्।।89।।

सौहार्दं स्तनयोः ते यत्तत्कान्ते क्वचिन्न भुवि दृष्टम्।
आश्लेषार्थं यूनामुच्छलतः तौ यतो दूरात्।।90।।

मम मानससितकरमणि विगतावर्णेन्दुबिम्बरुचिरास्ये।
त्वदनुगृहीतः सुन्दरि सुरपतिमपि ननु तृणं मन्ये।।91।।

अयि बहुमज्जनसुन्दरि धृतविकसितभृङ्गराजि रुचिराब्जे।
जलधिसुतेव विराजसि जितमिदमखिलं यया भुवनम्।।92।।

तन्वि मदङ्गविभूषे मृदुलस्पर्शे समुल्लसच्चिकुरे।
स्मितसुन्दरनयनान्ते त्वं सुरललनासि सनिमेषा।।93।।

सङ्गः स्तरुणीसङ्गस्स्पर्शस्तरुणीलसत्कुचस्पर्शः।
दृष्टिस्तरुणीदृष्टिस्तरुणी वचनं सखे वचनम्।।94।।

सततममन्दं गर्जतु सुन्दरि सजलोऽयमम्बुदः सुतराम्।
यत्स्वनतरला मदुरसि तरलाक्षि त्वं स्वयं लग्ना।।95।।

युवतिरियं वरदीपस्तल्लावण्यम्परा शिखा भाति।
युवजनमनःपतङ्गाः प्रसभं तदुपरि परिपतन्ति।।96।।

तन्वि तवालकगुम्फितनवतरसुमनो मनोज्ञगन्धेन।
हृतमनसश्च्युतलतिकास्त्वामभिगच्छन्ति रोलम्बाः।।97।।

प्रविशान्तर्विपुलस्तनि करिकुम्भाविति किलान्यथाऽयमिभः।
तव कुचयोः प्रहरिष्यति दृढमिति सुन्दरि विषाणाभ्याम्।।98।।

घनतरघनरव इति ते मानिन्या मानभेदने कुशलः।
जयतु सदा तव शोभां विपुलयतु च साधु सातिशयम्।।99।।

सुन्दरि तव मुखपद्मे सुरभितरे विकचनेत्रदलरुचिरे।
आस्सत्वरमिति युगपद्युवनयनालिव्रजः पतति।।100।।

किं कुर्म्मो वयमधुना युवतिजनानां विलासिहृदयहृताम्।
नोदेति मनसि करुणातरुणास्सुखिनो ययाशु स्युः।।101।।

सुन्दरि विस्मर विस्मर सकलानधुनाऽपराधनिकरान् मे।
भण भामिनि भुवि भवि कं कथमयमबलेऽन्यथा यायाम्।।102।।

वरवर्णिनि यौवनमिति परसुखहेतुञ्च तन्वि लावण्यम्।
चपला चञ्चलमबलेनखिलं कर्त्तुं त्वमर्हासि।।103।।

मृदुलसरसलसदरुणत्वत्पल्लवकान्तिसम्पदं प्रमदे।
किमभिनवः पल्लव इति कथमपि गन्तुं क्षमोऽस्ति वद।।104।।

स्मितललितादिविहीनो दीनो लीनो गतेषु रजनी नः।
तव वदनस्य विलासिनि कथमुपमानं कृतं कविभिः।।105।।

दुष्टधिया तन्वि कया कुरुषे मानं कुशिक्षिता सख्या।
शिव शिव दुर्ज्जनसंगतिरपि सुजनं दुर्ज्जनं कुरुते।।106।।

प्रतिपदमियमतिललिता रसभरकलिता विलासिनी गीतिः।
युवजनहृदयकुरङ्गान् स्मरलुब्धवशङ्गतां कुरुते।।107।।

तरुणीचरणसरोजे रागोल्लासीति यावको लग्नः।
एषा दशाविरक्ते मदनजिताः के वयं कृपणाः।।108।।

व्योमश्रोत्राङ्कपृथ्वीपरिमितिकलिते वैक्रमेऽब्दे युवाख्ये-
मास्याषाढे च शुक्ले शशधरदिवसे कार्त्तिकेय्यान्तिथौ च।
शृङ्गारोल्लासि चेतो रसिकजनमुदे चन्द्रमौलेर्न्नगय्यां-
लक्ष्मीनाराणयोऽहं विलसनविलसद्रत्नमालामकार्षम्।।109।।

इति श्रीमत्कौशल्यगोत्रोद्भवलक्ष्मीनारायणाह्वयकविवर–विरचिता
विलासरत्नमालासम्पूर्णा।



श्लोकानुक्रमणिका



